धूतपापेश्वर

।। आरोग्यचिंतन ।।

पत्रिका

।। शास्त्रतत्त्वप्रकाशार्थं एषा चिन्तनपत्रिका ।।

फरवरी २०२१

AROGYACHINTAN PATRIKA

आयुर्वेद दृष्टिकोण से पॉलिसिस्टिक ओवरी सिन्ड्रोम।

पॉलिसिस्टिक ओवरी सिन्ड्रोम (PCOS) स्त्रियों में वंध्यत्व के प्रमुख कारणों में से एक हैं। विशेषज्ञों के अनुसार भारत में १०% स्त्रियाँ PCOS से प्रभावित हैं।[१] **PCOS** का सटीक कारण अज्ञात हैं परंतु इसमें अनुवांशिकता, हार्मोनल (संप्रेरक) असंतुलन, स्थौल्य और इन्शुलिन प्रतिरोध इत्यादी कारण अंतर्निहित हैं। **PCOS** से प्रभावित स्त्रियों में अंडाशय (Ovaries) सामान्य मात्रा से अधिक ॲन्ड्रोजन (पुरुष संप्रेरक–Male hormone) की उत्पत्ति करते हैं, जो ओव्युलेशन (डिंबोत्सर्जन) का प्रतिबंध करते है तथा स्त्री संप्रेरको (Female hormones) में असंतुलन उत्पन्न करते हैं जिसके फलस्वरुप रजःप्रवृत्ती अनियमित होती है। ओव्युलेशन नहीं होता तथा कई लघ्वाकार ग्रन्थियाँ (Immature follicles – अपरिपक्व डिंब– स्त्री बीज) अंडाशय में उत्पन्न होती हैं।

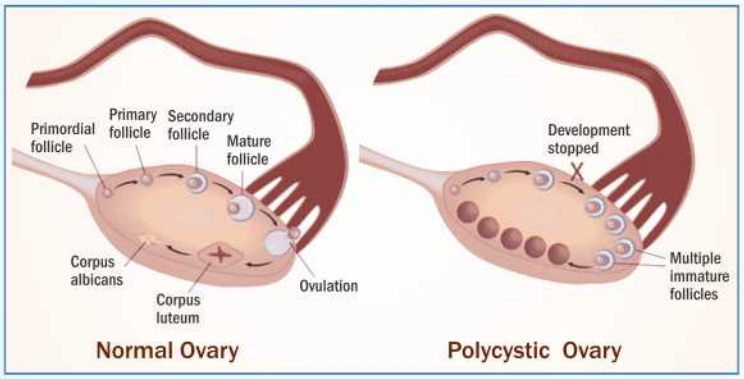

इन्शुलिन प्रतिरोध के कारण शरीर इन्शुलिन के प्रति असंवेदनशील होकर रक्तशर्करा की मात्रतः वृध्दि होती है, जो कि शरीर में इन्शुलिन का स्राव बढाता है। अत्यधिक इन्शुलिन, ॲन्ड्रोजन (पुरुष संप्रेरक) का उत्पादन बढाता हैं, जिसके कारण तारुण्यपीटिका, अतिलोमता, देहभारवृध्दी तथा ओव्युलेशन से सम्बन्धित समस्याएँ उत्पन्न होती है।

PCOS को चरक संहिता में वर्णित **अनुक्त व्याधि** के सिध्दांत पर सरलता से समझा जा सकता है, यह सिध्दांत इस व्याधिसमूह की संप्राप्ति समझने के साथ–साथ प्रभावी चिकित्सा प्रबंधन में भी सहाय्यक सिध्द होगा। चिकित्सास्थान में विविध व्याधियों की चिकित्सा का वर्णन करने के उपरान्त चरकाचार्य ने **अनुक्त व्याधियों** का वर्णन किया है।

रोगा येऽप्यत्र नोद्दिष्टा बहुत्वान्नामरुपतः।
तेषामप्येतदेव स्याद्दोषादीन् वीक्ष्य भेषजम्।।

दोषदूष्यनिदानानां विपरीतं हितं ध्रुवम।
उक्तानुक्तान् गदान् सर्वान् सम्यग्युक्तं नियच्छति।।
– चरक चिकित्सा ३०/ २९१–२९२

जिन व्याधियों का विशिष्ट नामकरण संभव न हो, उनकी चिकित्सा दोष, दूष्य इत्यादी के आधार पर करने का निर्देश हैं। चिकित्सा जो दोष, दूष्य तथा निदान के विपरीत हो वो लाभदायी सिध्द होती हैं।

त एवापरिसंख्येया भिद्यमाना भवन्ति हि।
रुजावर्णसमुत्थानस्थानसंस्थाननामभिः।।

व्यवस्थाकरणं तेषां यथास्थूलेषु संग्रहः।
तथा प्रकृतिसामान्यं विकारेषूपदिश्यते।। – चरक सूत्रस्थान १८/४२–४३

आचार्य चरक ने कहा हैं कि रुजा, वर्ण, समुत्थान, स्थान तथा संस्थान के आधार पर व्याधियाँ अपरिसंख्येय होती हैं। यह आवश्यक नहीं हैं कि प्रत्येक व्याधि का विशिष्ट नामकरण हो, इसलिए अनुक्तव्याधि की चिकित्सा करने में चिकित्सक को संभ्रमित नही होना चाहिए।

PCOS का साम्य किसी एकल व्याधि या लक्षणसमूह से नहीं हैं बल्कि इसके लक्षण आयुर्वेद संहिताओं में वर्णित विभिन्न **योनिव्यापद्** से साम्य रखते हैं। इनमें से कुछ **योनिव्यापद्** इस प्रकार हैं–

- **अरजस्का** (वात–पित्त प्रकोप के कारण उत्पन्न अल्पार्तव)
- **लोहितक्षया** (वात–पित्त प्रकोप के कारण उत्पन्न अल्पार्तव)
- **शुष्का** (वात प्रकोप के कारण उत्पन्न योनिशुष्कता तथा वेदना)
- **षण्ढी** (वात प्रकोप के कारण उत्पन्न अल्पार्तव तथा बीजदुष्टी)
- **वन्ध्या** (अनार्तव तथा वन्ध्यत्व)
- **पुत्रघ्नी** (पुनरावर्ती गर्भपात)

आयुर्वेद ग्रन्थों में वर्णित रजोदुष्टी तथा अनार्तव भी **PCOS** के लक्षणों से साम्य रखते हैं।

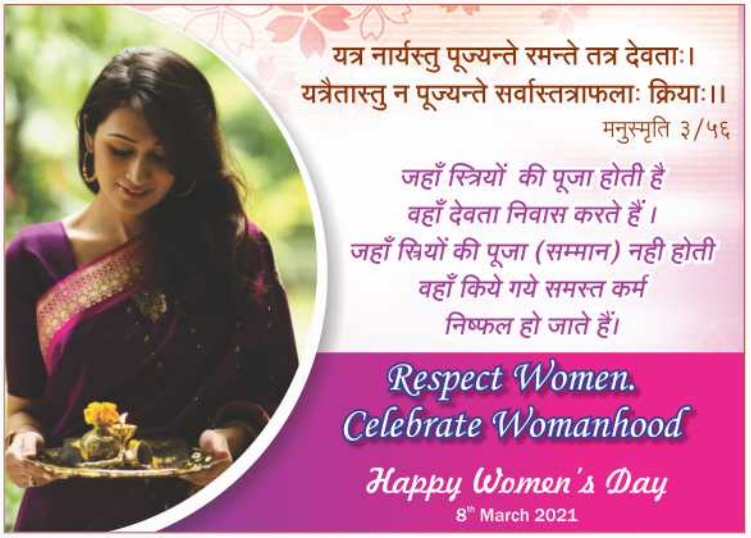

काश्यपसंहिता में कल्पस्थान के 'रेवतीकल्प' अध्याय में **जातहारिणी योनिव्यापद्** का वर्णन है। रेवतीग्रह स्त्रियों में वंध्यत्व तथा प्रजनन चक्र के विभिन्न चरणों में पीडा उत्पन्न कर बालकों में विभिन्न विकृतियाँ उत्पन्न करता हैं। यह ग्रह बीज, गर्भ तथा नवजात बालकों को प्रतिकूल रुप से प्रभावित तथा नष्ट करता हैं। यह विशेषतः उन स्त्रियों को प्रभावित करता हैं, जो धर्म का पालन नहीं करती तथा शारीरिक, मानसिक और सामाजिक नियमों का उल्लंघन करती हैं।

पुष्पघ्नी यह **जातहारिणी योनिव्यापद्** का एक साध्य प्रकार हैं जिसमें स्त्रियों मे रजःप्रवृत्ती होती परंतु वह स्त्री वंध्या रहती है। योनिव्यापद् के इस प्रकार में उर्ध्वहन्वस्थि उभरी हुई प्रतित होती है तथा अतिलोमता होती हैं, इसका साधर्म्य **PCOS** तथा अन्य ऍनोव्युलेटरी रजःविकृति से माना जा सकता है।

मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनार्तवेन च।
जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाच्च श्रृणु ताः पृथक्।।
चरक चिकित्सा ३०/८

योनिव्यापद् के सामान्य हेतुओं में मिथ्या आहार–विहार, रजोदुष्टी, बीजदुष्टी तथा दैव का समावेश हैं। इन हेतुओं से प्रकुपित वात एवं कफ, रस तथा मेद धातु को दूषित करते है, जिसके कारण **रजोदुष्टी** तथा **आर्तववह स्रोतस्** में दुष्टी होकर लक्षणों का प्रादुर्भाव होता हैं।

PCOS चिकित्साः

PCOS की चिकित्सा में 'निदानपरिवर्जन' यह प्राथमिक उपाययोजना हैं। अग्निमांद्य, मेदोवृध्दी, अपानवायु तथा कफ दुष्टी यह **PCOS** की सम्प्राप्ति में महत्वपूर्ण घटक हैं, जिनके अनुसार उचित आहार–विहार तथा औषधि का संयोजन करना चाहिए।

न हि वातादृते योनिर्नारीणां संप्रदुष्यति।
शमयित्वा तमन्यस्य कुर्याद्दोषस्य भेषजम्।।
चरक चिकित्सा ३०/११५

वात दोष की वृध्दि के बिना स्त्रियों में योनिविकार उत्पन्न नहीं होते, इसलिए वातदोष की चिकित्सा पित्त और कफ दोष की चिकित्सा के पहले करनी चाहिए। त्रिदोष में वात का विशेष महत्व है क्योंकि शरीर में सभी प्रकार कि क्रियाएँ वात के अधीन है तथा पित्त एवं कफ दोष वात के बिना पंगु है।

अग्निमान्द्य तथा **स्रोतसावरोध** दूर करने के लिए एवं **अपान–वातानुलोमन** करने हेतु हरीतकी चूर्ण, त्रिकटु चूर्ण, चित्रकादी गुटीका, षडूषण चूर्ण, तथा हिंग्वाष्टक चूर्ण इत्यादी का उपयोग करने का निर्देश हैं। चरकाचार्य द्वारा **अतिस्थौल्य** चिकित्सा में वर्णित **लेखन** द्रव्य तथा योग एवं आहार की सहायता से मेदोवृध्दि का नियोजन हो सकता हैं। **आर्तववह स्रोतस्** में उत्पन्न **संग** (अवरोध) को दूर करने के लिए उत्तरबस्ति का उपयोग किया जाता है।

PCOS की आधुनिक चिकित्सा, गर्भाधारण की अभिलाषा रखनेवाली स्त्रियों में ओव्युलेशन (डिंबोत्सर्जन) को प्रेरित करना, पुरुष संप्रेरक की मात्रा कम करना, देहभार कम करना तथा मधुमेह एवं हृदयविकार जैसी दीर्घकालीन व्याधियों का संकट कम करना इन उद्देशों से की जाती हैं।[२]

आयुर्वेद चिकित्सा द्वारा उपर्युक्त उद्देशों को साध्य किया जा सकता हैं। आयुर्वेद चिकित्सा **रजोदुष्टी** (रज यह रस का उपधातु हैं) तथा **आर्तववह स्रोतस्** दुष्टी को दूर करती है जिससे बीजधारणा (Conception) होकर गर्भधारणा होती है। यह **मेदोवह स्रोतादुष्टी** दूर करती हैं जिसके परिणामस्वरुप अतिस्थौल्य तथा इन्शुलिन प्रतिरोध में भी उपशय प्राप्त होता हैं।

स्त्री व्याधिहारी रस यह **PCOS** में लाभकारी सिध्द होने वाला युक्तिसंगत योग हैं। यह सूतिकाभरण रस (सुवर्णयुक्त) लताकरंजबीज घन, शताव्हा बीज घन, कार्पासमूल, त्रिकटु, रसोन स्वरस तथा असन क्वाथ का प्रभावी संयोजन हैं जो प्रकुपित वातदोष विशेषतः अपानवायु को प्राकृतावस्था में लाने में उपयोगी है। अपानवायु को नियंत्रित करने पर अपानवायु क्षेत्र में आनेवाले प्रजनन अवयवों (Reproductive organs) के कार्य में भी सुधार होता हैं।

घटक द्रव्य	कार्य
सूतिकाभरण रस	त्रिदोषशामक, उष्ण, तीक्ष्ण, लेखन तथा सर्वरोगहर।
लताकरंज बीज	त्रिदोषशामक, वेदनास्थापक तथा रक्तशोधक। यह गर्भाशयबल्य है तथा बीजधारणा में सहाय्यक होता हैं।[३]
शताह्वा बीज	वातश्लेष्महर, शूलहर, योनिशूलहर, पाचक एवं हृद्य। यह रजःप्रवृत्ति को नियमित करता हैं, रजःस्राव को बढाता है तथा वेदनाशमन करता है।[४]
कार्पासमूल	वातहर, लघु, उष्ण, मेदोहर, मेहहर तथा रजःस्रावर्धक।
त्रिकटु	कफशामक, स्थौल्यहर, मेदोहर तथा मेहहर।
रसोन स्वरस	कफशामक, वातानुलोमक तथा शूलप्रशमन।
असन क्वाथ	रसायन, श्लेष्महर तथा मेहहर (इन्शुलिन प्रतिरोध कम करता है)।

References:

1. R. Vidya Bharathi, S. Swetha, J. Neerajaa, J. Varsha Madhavica, Dakshina Moorthy Janani, S.N. Rekha, Ramya S., Usha B., An epidemiological survey: Effect of predisposing factors for PCOS in Indian urban and rural population, Middle East Fertility Society Journal, Volume 22, Issue 4, 2017, Pages 313-316, ISSN 1110-5690, https://doi.org/10.1016/j.mefs.2017.05.007.
2. Ajossa S, Guerriero S, Paoletti AM, Orrù M, Melis GB. The treatment of polycystic ovary syndrome. Minerva Ginecol. 2004 Feb;56(1):15-26. PMID: 14973407.
3. Meera Murugesan B, Muralidharan P, Hari R. Effect of ethanolic seed extract of Caesalpinia bonducella on hormones in mifepristone induced PCOS rats. J Appl Pharm Sci, 2020; 10(02):072–076.
4. Ghose A, Panda PK. Clinical efficacy of Shatapushpa (Anethum sowa Kurz.) powder in the management of Artava kshaya (oligomenorrhoea). Ayu. 2010;31(4):447-450. doi:10.4103/0974-8520.82039

स्त्री व्याधिहारी रस™
बीजविकृतीजन्य स्त्री विकारों की परिपूर्ण चिकित्सा।

उपयुक्तता:
अनियमित मासिक धर्म
P.C.O.S. से संबंधित लक्षण
◦ अनार्तव, स्थौल्य और वंध्यत्व

मात्रा एवं अनुपान:
१ से २ गोलियाँ दिन में २ से ३ बार, कुमारी आसव नं १, कोष्ण जल के साथ अथवा चिकित्सक की सलाहनुसार।

Shree Dhootapapeshwar Standards
SDS Monograph No. 1902644
Stree Vyadhihari Rasa

उपलब्धता: ३० गोली (ब्लिस्टर पॅक)

रक्तस्तम्भक टेबलेट्स की रक्तप्रदर में उपयुक्तता।

आर्तवचक्र (मासिक रजःप्रवृत्ति) यह स्त्रियों में प्रजनन चक्र या मातृत्व का महत्वपूर्ण प्राकृतिक हिस्सा हैं। मासिक रजःप्रवृत्ति, रजोदर्शन (Menarche) से आरंभ होकर रजोनिवृत्ति (Menopause) पर समाप्त होती हैं। आर्तवचक्र में गर्भाशय की अन्तःस्थ कला का बहिःनिर्गमन होता हैं। प्राकृत रजःप्रवृत्ति २४ से ३८ दिन के अन्तराल पर होती हैं जो ७ से ९ दिन तक चलती हैं तथा इसमें ५०–८० मिलिलिटर रक्तस्राव होता हैं।[1]

आचार्य भावप्रकाश के अनुसार, **मलरुप रुधिर** जो हर माह योनिमार्ग से निष्क्रमित होता हैं, उसे **रजः** कहते हैं। नियमित **रजः** प्रवृत्ति स्त्री के प्रजननकाल का आरंभ दर्शाती हैं, जिसे भावप्रकाश ने **स्त्रीधर्म** संज्ञा दी हैं। स्त्री–शरीर के आवश्यक प्रजोत्पादक भाव को **आर्तव** की संज्ञा दी गई हैं। आर्तव शब्द **मासिक रजः स्राव / स्त्रीधर्म** तथा **स्त्री बीज** इन दोनों के लिए उपयुक्त होता है। **आर्तव** रसधातु से उत्पन्न हैं, परंतु वह रसधातु की तरह सौम्य न होकर **आग्नेय** (तेज महाभूतप्रधान) होता हैं। आर्तव, रजः, शोणित, असृक्, रक्त, लोहितम्, पुष्पम्, रुधिरम् यह सभी पर्यायवाची शब्द हैं।

शुध्द आर्तव के लक्षण:

मासि मासि रजः स्त्रीणां रसजं स्रवति त्र्यहम्।
वत्सरात् द्वादशादूर्ध्वं याति पञ्चाशतः क्षयम्।। – अष्टांगहृदय शारीर १/७

मासान्निष्पिच्छदाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च।
नैवातिबहु नात्यल्पमार्तवं शुध्दमादिशेत्।। – चरक चिकित्सा ३०/२५५

आयुर्वेद संहिताओं में वर्णित प्राकृत **रजःस्राव** एक माह के अन्तराल पर आता हैं, जिसमें तीन दिन तक रक्तस्राव होता हैं। यह १२ वर्ष की आयु में प्रारंभ होकर (रजोदर्शन) ५० वर्ष की आयु (रजोनिवृत्ति) तक चलता हैं। रजःप्रवृत्ति जो एक माह के अन्तराल पर हो, जो पैच्छिल्य, दाह तथा वेदना रहित हो, जो पांच दिन तक चले, जो मात्रा में न अधिक न हीन हो उसे प्राकृत या दोष रहित मानी जाती हैं। प्राकृत **आर्तव** गुञ्जाफल या पद्मक या आलक्तक या इन्द्रगोप के समान रक्तवर्णी होता हैं।

रजः प्रदीर्यते यस्मात् प्रदरस्तेन स स्मृतः।
सामान्यतः समुद्दिष्टं कारणं लिङ्गमेव च।। – चरक चिकित्सास्थान ३०/२०९

आचार्य चरक के अनुसार यदि रजःप्रवृत्ति में विकृति उत्पन्न होकर **रजः** का **प्रदीरण** (अतिस्राव) शुरु हो तो उसे **प्रदर रोग** कहते हैं। आचार्य सुश्रुत के अनुसार, रजःप्रवृत्ति के दौरान तथा दो रजःप्रवृत्तिकाल के अन्तराल में भी प्राकृत रजः के लक्षणों से रहित, अत्यधिक काल तक तथा अधिक मात्रा में रजः स्राव होना, **असृग्दर / प्रदर** कहलाता हैं। अत्यधिक रजःप्रवृत्ति यह चरकसंहिता तथा सुश्रुतसंहिता में वर्णित **रक्तज** तथा **असृजा योनिव्यापद्** का प्रमुख लक्षण हैं। आयुर्वेद संहिता ग्रन्थों में **असृग्दर** को **रक्तप्रदर** भी कहा गया हैं जो Abnormal Uterine Bleeding (AUB) से साधर्म्य रखता हैं। AUB (योनिगत विकृत रक्तस्राव) यह एक विस्तृत संज्ञा हैं जो रजःप्रवृत्ति की आवृत्ति, अवधि, नियमितता तथा मात्रा में अनियमितता को दर्शाती हैं।[1] रजोदर्शन से रजोनिवृत्ति के अन्तराल में ९–१४% स्त्रियाँ AUB से ग्रसित होने का अनुमान हैं। AUB का प्रचलन विभिन्न देशानुसार बदलता हैं। भारत में AUB प्रचलन लगभग १७.९% हैं।[2] आचार्य चरक द्वारा वर्णित असृग्दर के मुख्य हेतुओं में पित्तवर्धक आहार–विहार का समावेश है। वातदुष्टी के बिना, योनि दूषित नहीं होती इसलिए सभी **योनिव्यापद्** तथा **आर्तवव्यापद्** वात दोष के प्रकोप के कारण होने का उल्लेख हैं।

.....भजन्त्याः कुपितोऽनिलः। रक्तं प्रमाणमुत्क्रम्य गर्भाशयगताः सिराः।।
रजोवहाः समाश्रित्य रक्तमादाय तद्रजः। यस्माद्विवर्धयत्याशु रसभावाद्विमानता।
तस्मादसृग्दरं प्राहु.....। – चरक चिकित्सा ३०/ २०६–२०८

प्रकुपित हुआ वात दोष रक्त की प्रमाणतः वृध्दि कर उसे रजोवह सिरा में लाता है तथा रजः की मात्रतः वृध्दि करता है, जो कि रजोवह सिरा से प्रवाहित होकर **रक्तप्रदर** उत्पन्न करता हैं। यह वातज, पित्तज, कफज तथा सन्निपातज ऐसे चार प्रकार का होता हैं।

वातज प्रदर	फेनिल, तनु, रुक्ष, श्याव, अरुण वर्ण का पलाशपुष्प समान, वेदना के साथ या वेदनारहित स्राव होता है।
पित्तज प्रदर	नील, पीत या कृष्ण वर्ण का, अत्यधिक उष्ण, वेदना के साथ तथा अतिमात्रा में स्राव होता हैं।
कफज प्रदर	पिच्छिल, पाण्डुवर्ण का, गुरु, स्निग्ध, शीत, किञ्चित् कफ मिश्रित तथा मन्द वेदना के साथ स्राव होता है।

यदि वातज, पित्तज तथा कफज प्रदर के मिश्र लक्षण उपस्थित हो तो उसे सन्निपातज प्रदर कहते हैं। **रक्तप्रदर** की चिकित्सा **योनिव्यापद्, रक्तातिसार, रक्तपित्त** तथा **रक्तार्श** के समान करनी चाहिए।

रक्तप्रदर चिकित्सा को निम्नोक्त प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता हैं – **निदानपरिवर्जन, दोष–शोधन, दोष–शमन** तथा **रक्तस्थापन (रक्तस्तम्भन)**। शोधन प्रक्रिया तथा उत्तरबस्ति का प्रयोग सम्यक् रुप से करना चाहिए। **रक्तस्तंभक** औषधिद्रव्य तथा योग कषाय तथा तिक्त रसात्मक होते हैं। सामान्यतः उपयोग में लिए जानेवाली **रक्तस्तंम्भक** औषधियाँ तथा योग इस प्रकार हैं– नागकेशर, मोचरस, लाक्षा, अशोक, लोध्र, दूर्वा, गैरिक, पुष्यानुग् चूर्ण, अशोकारिष्ट, प्रदरान्तक लोह इत्यादि।

रक्तस्तम्भक टेबलेट्स यह एक विशेष **रक्तस्तम्भक / रक्तस्थापक** योग है जो शीतगुण एवं कषाय रसात्मक घटक द्रव्यों की सहायता से रक्तवाहिनियों में संकोच उत्पन्न कर अत्यधिक रक्तस्राव को रोकता है।

घटक द्रव्य	कार्य
नागकेशर	रक्तसंग्राहक तथा गर्भस्थापक।
शोधित लाक्षा	कषाय, व्रणरोपक तथा रक्तप्रदरहर।
मोचरस	ग्राही, शीत तथा अत्यार्तव में लाभदायी।
शोधित गैरिक	रक्तस्तम्भक तथा रक्तवर्धक।
दूर्वा स्वरस	शीत, रक्तस्कन्दक तथा गर्भस्थापक हैं।

References:
1. https://www.ncbi.nlm.nih.gov/books/NBK532913/
2. B.G. Malathi et al. Endometrial histopathology in abnormal uterine bleeding. IP Archives of Cytology and Histopathology Research, October-December, 2017; 2(4):70-74.

स्थौल्य चिकित्सा में गुग्गुल की उपयुक्तता।

मध्यम पुरुष या आदर्श शरीर संरचना वाली व्यक्ति का उल्लेख चरक संहिता में इस प्रकार वर्णित है:

सममांसप्रमाणस्तु समसंहननो नरः।
दृढेन्द्रियो विकाराणां न बलेनाभिभूयते।।
क्षुत्पिपासातपसहः शीतव्यायामसंसहः।
समपक्ता समजरः सममांसचयो मतः।। – च. सू. २१/१८-१९

जिस व्यक्ति में मांस धातु का प्रमाण सम हो, शरीर अवयव तथा इन्द्रियाँ सुदृढ हो ऐसी व्यक्ति विविध रोगों के बल (प्रभाव) से पराजित नहीं होती अर्थात् वह स्वस्थ रहती हैं। ऐसी व्यक्ति शीत, व्यायाम (अधिक परिश्रम) को सहनेवाली होती हैं, तथा उसकी **अग्नि** सम रहती हैं। जिन व्यक्तियों का शरीर आदर्श अनुपात में न हो, वे **अतिस्थूल** या **अतिकृश** होते हैं। **अतिस्थूल** तथा **अतिकृश** संरचनावाले व्यक्तियों का समावेश **अष्टौनिन्दित** में किया गया है।

सततं व्याधितावेतावतिस्थूलकृशौ नरौ।
सततं चोपचर्यौ हि कर्शनबृंहणैरपि।।

स्थौल्यकार्श्ये वरं कार्श्यं समोपकरणौ हि तौ।
यद्युभौ व्याधिरागच्छेत् स्थूलमेवातिपीडयेत्।। – च. सू. २१/१६-१७

अतिस्थूल तथा **अतिकृश** व्यक्ति सदैव रोग से पीडित रहते है तथा इनका निरंतर व्यवस्थापन क्रमशः **कर्षण (अपतर्पण)** तथा **बृंहण (संतर्पण)** चिकित्सा द्वारा करने की आवश्यकता होती हैं। **अतिस्थौल्य** की अपेक्षा **अतिकार्श्य** को अच्छा माना जाता है क्योंकि **अतिस्थूल** व्यक्ति को कोई भी शारिरीक या मानसिक व्याधि **अतिकृश** व्यक्ति की अपेक्षा अधिक पीडित करती है।

मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः।
अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते।। – च. सू. २१/९

अतिस्थूल व्यक्ति में मेद और मांसधातु की अधिक वृध्दि के कारण नितम्ब, उदर तथा स्तनप्रदेश की वृध्दि होकर वह लटके हुए प्रतीत होते हैं । ऐसे व्यक्ति में अंग प्रत्यंगो की वृध्दि उचित रुप से नहीं होती तथा वह निरुत्साही होता है। **अतिस्थौल्य** के प्रमुख हेतुओं में **अतिसंतर्पण** जो गुरु, मधुर, शीत, स्निग्ध आहारद्रव्यों का सेवन करने, व्यायाम न करने, मैथुन न करने, दिवास्वाप करने, सर्वदा प्रसन्नचित्त रहने, कभी भी चिन्ता, शोक आदि मानसिक विषयों से ग्रस्त न होने तथा बीजस्वभाव का समावेश हैं। उपर्युक्त हेतुओं के कारण शरीर में अत्यधिक मेद संचिति होती हैं तथा अन्य धातु का ह्रास होता हैं। **अतिस्थूल** व्यक्ति में आयु का क्षय, निरुत्साह, क्लैब्य, दौर्बल्य, शरीरदौर्गन्ध्य, अत्यधिक स्वेदप्रवृत्ति, अत्यधिक क्षुधा तथा पिपासा यह आठ दोष पाये जाते हैं।

अतिस्थौल्य की सम्प्राप्तिः

मेदसाऽऽवृतमार्गत्वाद्वायुः कोष्ठे विशेषतः।
चरन् सन्धुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि।।

तस्मात् स शीघ्रं जरयत्याहारं चातिकाङ्क्षति।
विकारांश्चाश्नुते घोरान् कांश्चित्कालव्यतिक्रमात्।।

एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ।
एतौ हि दहतः स्थूलं वनदावो वनं यथा।। च. सू. २१/५-७

शरीर में अत्यधिक **मेदसंचिति** स्रोतसावरोध उत्पन करती है, जिससे वायु विशेष रुप से **कोष्ठ** में अवरुध्द होकर अग्नि को तीव्र करती हैं तथा आहार का शोषण करती है। इसके फलस्वरुप व्यक्ति अधिक मात्रा में तथा बार बार आहार सेवन करती हैं। यदि आहारकाल का अतिक्रमण किया जाए तो भयंकर विकार उत्पन्न हो सकते हैं। **स्थौल्य** में **अग्नि** (आहार पचन के लिए आवश्यक पित्त) तथा **वायु** यह दो मूलभूत कष्टकारी घटक व्यक्ति को उसी प्रकार कष्ट देते हैं जिस प्रकार बढी हुई दावाग्नि वन को जलाकर नष्ट कर देती हैं। मेदोधातु के अत्यधिक बढने से प्रकुपित दोष भयंकर रोगों को उत्पन्न कर अतिस्थूल व्यक्ति के जीवन को नष्ट कर देते हैं।

अतिस्थौल्य की चिकित्साः

गुरु चातर्पणं चेष्टं स्थूलानां कर्शनं प्रति।
कृशानां बृंहणार्थं च लघु संतर्पणं च यत्।। – चरक. सूत्रस्थान. २१/२०

अतिस्थूल व्यक्तियों को **कृश** करने हेतु **गुरु** तथा **अपतर्पण** आहार तथा चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए तथा **अतिकृश** व्यक्तियों का **तर्पण** करने हेतु **लघु** तथा **संतर्पण** चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए। निदानपरिवर्जन यह **स्थौल्य** चिकित्सा का प्रथम चरण है। **नित्य लंघन** चिकित्सा तथा **शिशिर ऋतु** में भी **लंघन** के प्रयोग का निर्देश आचार्य वाग्भट द्वारा किया गया है। आचार्य चरक के अनुसार, **लंघन** चिकित्सा में वमन, विरेचन, निरुहबस्ति, शिरोविरेचन, पिपासानिग्रह, मारुतसेवन, आतपसेवन, पाचन, उपवास और व्यायाम इन उपक्रमों का समावेश होता हैं। इन उपक्रमों का प्रयोग रुग्ण के **देहबल** और **व्याधिबल** के अनुसार करने का निर्देश किया जाता हैं। षडविध उपक्रमों में से **लंघन** और **रुक्षण** उपक्रम **स्थौल्य** कि चिकित्सा में अधिक उपयुक्त हैं। वाग्भटाचार्य ने सभी चिकित्सा उपक्रमों को दो मुख्य उपक्रमों के अंतर्गत वर्गीकृत किया हैं – **लंघन** और **बृंहण**। **लंघन** उपक्रम को **संशोधन** और **संशमन** ऐसे पुनर्वर्गीकृत किया गया हैं। **अतिस्थौल्य** से मुक्त होने की अभिलाषा रखनेवाली व्यक्ति को प्रजागरण, व्यवाय, व्यायाम एवं मानसिक परिश्रम को क्रमशः बढाना चाहिए।

स्थौल्य चिकित्सा में उपयुक्त होनेवाले महत्वपूर्ण औषधिद्रव्य तथा योग में **शोधित गुग्गुलु**, गुडूची, मुस्ता, त्रिफला, लोहभस्म, ताम्रभस्म, तक्रारिष्ट, आरोग्यवर्धिनी गुटीका, चन्द्रप्रभा वटी तथा विभिन्न **गुग्गुलु कल्पों** का समावेश होता हैं।

भारतीय पारंपारिक चिकित्सा प्रणाली अर्थात् आयुर्वेद-सन्धिगतवात, चयापचयजन्य व्याधि जैसे स्थौल्य, त्वग्विकार आदि की चिकित्सा में **गुग्गुल** ***(Commiphora wightii)*** के प्रयोग का निर्देश देती हैं।[१] आयुर्वेद में **गुग्गुल** का औषधिप्रयोग करने के पूर्व उसके संभाव्य दोष दूर करने के लिए तथा चिकित्सीय प्रभाव को वृध्दिंगत करने के लिए विधिवत् **शोधन विधि** करने का निर्देश किया गया हैं। **शोधित गुग्गुल** तथा विभिन्न **गुग्गुल कल्पों** का उपयोग दीर्घ समय तक किया जाता है तथा यह **स्थौल्य** चिकित्सा के अविभाज्य अंग है। **शोधित गुग्गुल रसायन** तथा **लेखन** कार्य करता है। **शोधन विधि** में **अशुध्द गुग्गुल** को विशिष्ट **शोधन** द्रव्य जैसे जल, गोमूत्र, गोदुग्ध, औषधि स्वरस / क्वाथ के साथ संस्कारित किया जाता हैं।[२] **शोधित गुग्गुल** का प्रयोग केवल अत्यधिक देहभार या स्थौल्य में ही नहीं बल्कीं प्रमेह, संधिगतवात, रक्तगत मेदोवृध्दि, काकलक ग्रन्थि अल्पक्रियता (Hypothyroidism) इन सहयोगी (co-morbid) विकारों में भी उपयुक्त सिध्द होता हैं।

साल २०१४ में विश्व के लगभग ३९% वयस्कों (Adult) को अत्यधिक देहभार वाली (Overweight, BMI 25.0-29.9 kg/m^2) या स्थूल व्यक्तियों (Obese, BMI>29.9 kg/m^2) में वर्गीकृत् किया गया।[३] अत्यधिक देहभार तथा स्थूल व्यक्तियों की संख्या विश्व की अपेक्षा भारत वर्ष में तीव्र गती से बढ रही हैं। यह अनुमान लगाया गया हैं कि २०४० तक भारतीय पुरुषों में अत्यधिक देहभार तथा स्थौल्य का प्रचलन क्रमशः ३०% और १०% तक बढने की आशंका हैं तथा यह प्रचलन स्त्रियों में क्रमशः २७% और १४% बढने की आशंका हैं।[३] अत्यधिक देहभार या स्थौल्य यह Type II डायबिटीस (प्रमेह), उच्चरक्तचाप, संधिगतवात, स्त्रियों में होनेवाला स्तनों का कर्करोग, योनिगत कर्करोग, रजोविकृति, वंध्यत्व तथा विभिन्न विकारों का मुख्य कारण हैं।[४]

एन्टेरोपॅथी में डायक्लोफेनॅक की तुलना शोधित गुग्गुल का संरक्षणात्मक प्रभाव।

अध्ययन केन्द्र: डिपार्टमेन्ट ऑफ फार्माकोलॉजी ॲण्ड थेराप्युटीक्स, सेठ जी. एस. मेडीकल कॉलेज ॲण्ड के. ई. एम. हॉस्पिटल, मुंबई।

गुग्गुल का लघ्वन्त्र (Small intestine - Jejunum & Ileum) श्लैष्मिक कला पर होनेवाले प्रभाव का अध्ययन उपलब्ध नहीं था। प्रस्तुत अध्ययन (Animal study) में **शोधित गुग्गुल** की लघ्वन्त्र श्लैष्मिक कला को क्षति पहुँचाने की संभावना (Enteropathy causing potential) का परीक्षण किया गया। इस अध्ययन में **त्रिफला विशेष शोधित गुग्गुल** (१५०० मि.ग्रा. मात्रा प्रतिदिन) तथा **गोमूत्र विशेष शोधित गुग्गुल** (१५०० मि.ग्रा. मात्रा प्रतिदिन) के साथ-साथ एक उपलब्ध प्रोपरायटरी कल्प (Marketed Proprietary Formulation-MPF) का उपयोग किया गया जिसमें **त्रिफला विशेष शोधित गुग्गुल** (३०० मि.ग्रा. मात्रा प्रतिदिन) हैं।

इन औषधियों के प्रयोग से लघ्वन्त्र में होनेवाले हिस्टोपॅथोलॉजिकल तथा बायोकेमिकल प्रभाव/परिवर्तन का निरीक्षण किया गया। तुलनात्मक अध्ययन के लिए **डायक्लोफेनॅक** (१५० मि.ग्रा./प्रतिदिन की मात्रा) का उपयोग किया गया जो कि सामान्यतः उपयुक्त होनेवाली शोथहर/वेदनाहर औषधि है। इस औषधि की लघ्वन्त्र को क्षति पहुंचाने की क्षमता (Enteropathy causing potential) सिध्द है।[4,6] प्रस्तुत अध्ययन में उपयोग की गई सभी औषधियों की मानवीय मात्रा (Human dose) को समकक्ष प्राणियों (Wistar Rats) की मात्रा में परिवर्तित कर उपयोग में लिया गया। **डायक्लोफेनॅक** जैसी शोथहर औषधियाँ लघ्वन्त्र की भेद्यता (permeability) को बढाकर **आन्त्रिक शोथ** (Low grade inflammation) उत्पन्न करती है, जिससे आन्त्र में न्युट्रोफिल की उपस्थिती बढती है। **Myeloperoxidase (MPO)** क्रिया को न्युट्रोफिल की उपस्थिती का मानक (biomarker) माना जाता है जो कि आन्त्र शोथ की तीव्रता का घोतक है।[9] **MPO** क्रिया आन्त्रशोथ/व्रण की स्थिती में बढती है तथा व्रणरोपण की प्रक्रिया में कम होती है।[7]

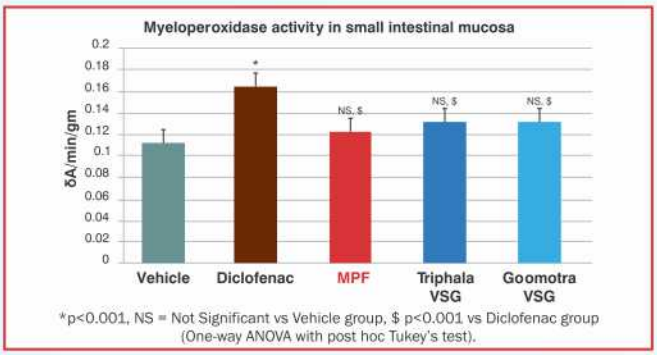

*p<0.001, NS = Not Significant vs Vehicle group, $ p<0.001 vs Diclofenac group (One-way ANOVA with post hoc Tukey's test).

प्रस्तुत अध्ययन में डायक्लोफेनॅकजन्य लघ्वन्त्रशोथ पाया गया, जिसके फलस्वरुप **MPO क्रिया** में वृध्दि देखी गई। **त्रिफला** तथा **गोमूत्र विशेष शोधित गुग्गुल** के प्रयोग से **MPO क्रिया** में वृध्दि नहीं देखी गई जो कि आन्त्रशोथ न होने का निर्देश देती हैं।

लघ्वन्त्र की श्लैष्मिककला (Barrier mucus) का स्वरुप पिच्छिल तथा जैल सदृश होता है और इसका कार्य आन्त्र की विषाक्त द्रव्यों से रक्षा करना होता है।[8]

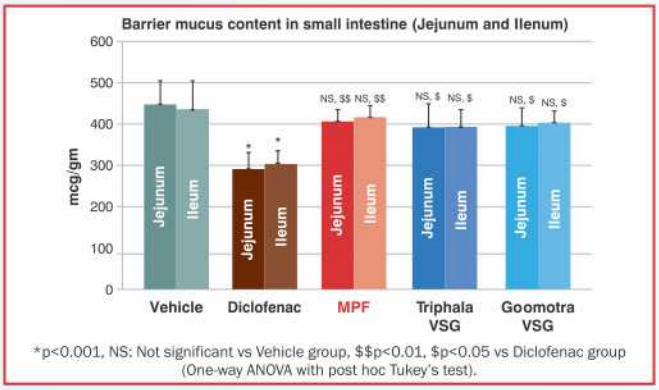

*p<0.001, NS: Not significant vs Vehicle group, $$p<0.01, $p<0.05 vs Diclofenac group (One-way ANOVA with post hoc Tukey's test).

डायक्लोफेनॅक के प्रयोग से लघ्वन्त्र (Jejunum and ileum) की संरक्षणात्मक श्लैष्मिककला में क्षति/ मात्रा में कमी देखी गई। **त्रिफला** तथा **गोमूत्र विशेष शोधित गुग्गुल**, **तटस्थ (Vehicle) गट** में श्लैष्मिककला क्षति/ मात्रा में कमी नहीं देखी गई जो कि **विशेष शोधित गुग्गुल** के श्लैष्मिककला संरक्षणात्मक प्रभाव को सिध्द करते है। **विशेष शोधित गुग्गुल** तथा **गुग्गुलयुक्त** प्रोपरायटरी कल्प का **MPO क्रिया** में वृध्दि न करने की क्षमता तथा श्लैष्मिककला पर संरक्षणात्मक प्रभाव समान था।

इस अध्ययन से यह सिध्द होता है कि **त्रिफला** तथा **गोमूत्र विशेष शोधित गुग्गुल** ने लघ्वन्त्र क्षति का प्रतिबंध किया जो कि हिस्टोपॅथोलॉजिकल परीक्षण, **MPO क्रिया** में कमी तथा लघ्वन्त्र श्लैष्मिक कला के संरक्षण से सिध्द हुआ। **विशेष शोधित गुग्गुल** के संरक्षणात्मक प्रभाव का श्रेय **विशेष शोधन विधि** को दिया जा सकता है।

References:

1. IOSR J Nurs Health Sci 2016; 5: 76-81., 2. Scientifica (Cairo). 2015:138039., 3. PLoS ONE 2000;15(2):e0229438. 4. National Journal of Community Medicine Vol 2 Issue 2 July-Sept 2011., 5. Drugs. 2015;75(8):859-877., 6. World J Gastroenterol 2013; 19(12):1861-76., 7. Gastroenterol 1989; 96(3):795-803., 8. J Pharmacol Expt Ther 2009; 328(3): 829-38., 9. J Pharm Pharmaceut Sci 2000;3(1):137-55.

पुरुष वंध्यत्व में बीजपुष्टी रस की उपयुक्तता।

एक वर्ष की अवधि तक बिना किसी गर्भनिरोधक का उपयोग किये व्यवाय करने के उपरान्त भी गर्भधारणा न होना वंध्यत्व का संकेत देता है। ८०–८५% दम्पति में बिना किसी गर्भनिरोधक का उपयोग किए १२ माह के भीतर ही गर्भधारणा होती है। पुरे विश्व में लगभक ८–१२% दम्पति वंध्यत्व से पीडित है।[१] लगभग ४०–५०% दम्पति में वंध्यत्व का कारण पुरुषों में पाया जाता है, जिनमें से २% पुरुष शुक्रदुष्टी (suboptimal sperm parameters) से ग्रस्त होते हैं। पुरुषों में वंध्यत्व का कारण शुक्राल्पता (low sperm concentration), शुक्राणुओं की गति कम होना (Poor sperm motility) अथवा शुक्राणुओं की विकृत संरचना (abnormal morphology) हो सकता हैं। एक अध्ययन के अनुसार, शुक्राल्पता का प्रचलन बडे शहरों के साथ–साथ छोटे शहरों में भी अधिक हैं। मानसिक तनाव, अपर्याप्त पोषण, व्यायाम का अभाव, कैफिन का अत्यधिक सेवन तथा अंडकोष के तापमान में वृध्दि जैसे कारण पुरुष वंध्यत्व से जुडे हैं। एक अध्ययन यह भी इंगित करता है कि मानसिक तनाव (Psychological stress) यह वीर्य की गुणवत्ता (seminal quality) में कमी लाता है, अतः मानसिक तनाव को कम करने वाले उपायों का अवलंबन पुरुष वंध्यत्व की चिकित्सा में महत्वपूर्ण है।[४]

प्राकृत शुक्रपरीक्षण मानक (Normal Semen Analysis Parameters)[5]	
Sperm concentration Volume	At least 1.5 mL
Sperm concentration	At least 15 million/mL
Total sperms	At least 39 million/ejaculate
Normal forms	At least 4%
Live forms	At least 58%
Progressive motility	At least 32%
Total motility	At least 40%

काम अथवा कामुकता यह प्रजनन का मूल हैं तथा तृतीय पुरुषार्थ भी हैं। **शुक्रधातु** (संरचनात्मक तथा क्रियात्मक रुप स) स्वस्थ होनेपर ही प्रजनन क्षमता बढती है। **शुक्रधातु** यह सर्व धातुओं का उत्तम परिष्कृत उत्पाद तथा सार हैं। यह सर्वशरीरव्यापी हैं तथा **शुक्रधातु** के चयापचय में **शुक्रधातु** के पोषक घटकों का **शुक्रधात्वग्नि** के द्वारा प्रसंस्करण होकर एक माह में शुक्रधातु की उत्पत्ति होती हैं।

स्निग्धं घनं पिच्छिलं च मधुरं चाविदाहि च।
रेतः शुद्धं विजानीयाच्छ्वेतं स्फटिकसन्निभम्।। – च. चि. ३०/१४५

शुक्र जो स्निग्ध, घन, पिच्छिल, मधुरसात्मक, अविदाही तथा स्फटिक के समान श्वेतवर्णी हो उसे शुध्द या प्राकृत माना जाता हैं।

बृहत्त्रयी ग्रन्थों में **शुक्रवह स्रोतस्** का वर्णन हैं। चरकसंहिता ने वृषण तथा शेफ को **शुक्रवह स्रोतस्** को मूलस्थान कहा हैं पर सुश्रुतसंहिता के अनुसार स्तन तथा वृषण शुक्रवह स्रोतस् के मूलस्थान है। आचार्य सुश्रुत के अनुसार, शुक्रधराकला सर्वशरीरव्यापी हैं। शुक्रसार व्यक्तिओं में धैर्य, सौमनस्य तथा शक्ति जैसे शारीरिक एवं मानसिक गुणधर्म पाए जाते है।

अतिव्यवाय, अकालमैथुन तथा अयोनिगमन या सर्वथा मैथुनत्याग करना, अतिव्यायाम, रुक्ष, तिक्त, कषाय, अम्ल, लवण रसात्मक तथा उष्ण आहार या अनुचित आहार का सेवन, वार्धक्य, मानसिक तनाव, चिंता, असम्यक् शस्त्रकर्म, वेगधारण इत्यादि कारणों से दोष अलग–अलग या एकत्रित रुप से दूषित होते है जो **शुक्रवह/रेतोवह स्रोतस्** में पहुँचकर **शुक्रधातु** में विकृति उत्पन्न करते हैं।

शुक्रस्य दोषात् क्लैब्यमहर्षणम्।
रोगि वा क्लीबमल्पायुर्विरूपं वा प्रजायते।
न चास्य जायते गर्भः पतति प्रस्रवत्यपि।
शुक्रं हि दुष्टं सापत्यं सदारं बाधते नरम्।। – च. सू. २८/१८–१८

शुक्रधातु के विकृत होने पर नपुंसकत्व, कामोत्तेजना का अभाव, गर्भधारणा न होना, गर्भस्राव या गर्भपात होना, रोगी या नपुंसक या अल्पायु या विरुप संतति होने जैसे दोष उत्पन्न होते है। इस तरह दूषित शुक्र भार्या तथा सन्तान को भी कष्ट पहुँचाता हैं।

दौर्बल्यं मुखशोषश्च पाण्डुत्वं सदनं श्रमः।
क्लैब्यं शुक्राविसर्गश्च क्षीणशुक्रस्य लक्षणम्।। च. सू. १७/६९

शुक्रधातु क्षीणता के लक्षणों में दौर्बल्य, मुखशोष, पाण्डुत्व, शरीरसदन, श्रम, क्लैब्य, शुक्र का विसर्ग न होना समाविष्ट है।

आचार्य चरक ने ८ प्रकार की **शुक्रदुष्टी** का वर्णन किया है– **फेनिल, तनु, रुक्ष, विवर्ण, पूति, पिच्छिल, अन्यधातूपसंसृष्ट** तथा **अवसादी**। फेनिल, तनु, रुक्ष तथा अल्प–कृच्छ्र **शुक्रदुष्टी** यह वातप्राधान्य से होती हैं जिससे प्रजनन में अक्षमता उत्पन्न होती हैं। पित्तप्रधान शुक्रदुष्टी में नीले या पीत वर्ण का पूतिगन्धयुक्त शुक्र होकर सदाह शुक्रप्रवृत्ति होती हैं।

कफप्रधान शुक्रदुष्टी में शुक्र अत्यधिक पिच्छिल होता है जो शुक्रवह स्रोतस् को अवरुध्द करता है। सरक्त शुक्रप्रवृत्ति यह अत्यधिक व्यवाय द्वारा स्थानिक क्षति के कारण उत्पन्न होती है।

शुक्रदुष्टी की चिकित्सा में उचित शोधन तथा शमन उपायों का अन्तर्भाव हैं। दूषित घटकों के आधारपर **वाजीकर, रक्तपित्तहर** तथा **योनिव्यापद्हर** योगों का प्रयोग करने का निर्देश है।

शुक्रदोषनाशक योगों में जीवनीयघृत, च्यवनप्राश अवलेह और शोधित शिलाजतु का समावेश हैं। वातज शुक्रदुष्टी में निरुह तथा अनुवासन बस्ति का निर्देश हैं। पित्तज शुक्रदुष्टी में अभयामलकीय रसायन तथा कफज शुक्रदुष्टी में पिप्पली रसायन, त्रिफला रसायन इत्यादि का निर्देश हैं।

वाजीकरण/ वृष्य औषधियों का पुरुष वंध्यत्व (शुक्रदुष्टी) की चिकित्सा में विशेष महत्व है तथा इनमें उचित आहार, औषधि तथा विहार का समावेश है, जिससे स्वस्थ संतति प्राप्त हो तथा यौन स्वास्थ्य बना रहें।

शुक्रवृध्दिकर (Spermatogenic) द्रव्य – उदा. माष, क्षीर, इक्षुरस इ.

शुक्रस्त्रुतिकर (Improve libido) द्रव्य – उदा. कुपिलु, आकारकरभ इ.

शुक्रसुतिवृध्दिकर (Improve libido & spermatogenesis) द्रव्य – उदा. अश्वगन्धा, गोक्षुर, मुसली इ.

बीजपुष्टी रस यह प्रचलित वनौषधि तथा खनिज द्रव्यों का संयुक्तिक योग हैं जिसके घटकद्रव्य पुरुष वंध्यत्व की चिकित्सा में लाभदायी हैं। **बीजपुष्टी रस** निम्नलिखित लाभ प्रदान करता हैं:

घटक द्रव्य	कार्य
सुवर्ण भस्म तथा अश्वगंधा	रसायन तथा अवसादहर कर्म।
पूर्णचंद्रोदय मकरध्वज	वाजीकर और शुक्रल।
गोक्षुर, सालमपंजा (मुंजातक), आत्मगुप्ता तथा श्वेत मुशली	वृष्य (पुरुष यौनस्वास्थ में सुधार लाता है) तथा शुक्रवर्धक।
शतावरी, यष्टी तथा आमलकी	शुक्रल तथा रसायन।

References: 1. J Hum Reprod Sci. 2015 Oct-Dec;8(4):191-6., 2. Asian J Androl. 2006 Jan;8(1):89-93., 3. Reprod Biol Endocrinol. 2018 Nov 26;16(1):115. doi: 10.1186/s12958-018-0436-9., 4. Andrologia. 2015 Apr;47(3):336-42., 5. http://www.who.int/reproductivehealth/publications/infertility/9789241547789/en/

बीजपुष्टी रस का शुक्राल्पता (Experimentally induced Oligospermia in rats) में प्रभाव।

अध्ययन केन्द्र: नॅशनल सेंटर फॉर प्रीक्लिनिकल रिप्रोडक्टिव ॲण्ड जेनेटिक टॉक्सिकोलॉजी, नॅशनल इंस्टीटयुट फॉर रिसर्च इन रिप्रोडक्टिव हेल्थ (आय.सी.एम.आर.), परेल, मुंबई।

बीजपुष्टी रस (BPR) चिकित्सा से 17β-estradiol जन्य विषाक्त प्रभाव – शुक्राल्पता (Oligospermia) में उपशय देखा गया। **बीजपुष्टी रस** द्वारा शुक्राणुसंख्या (Daily Sperm Count & Daily Sperm Production) तथा पुरुष संप्रेरक (Serum testosterone) की मात्रा में वृध्दि हुई।

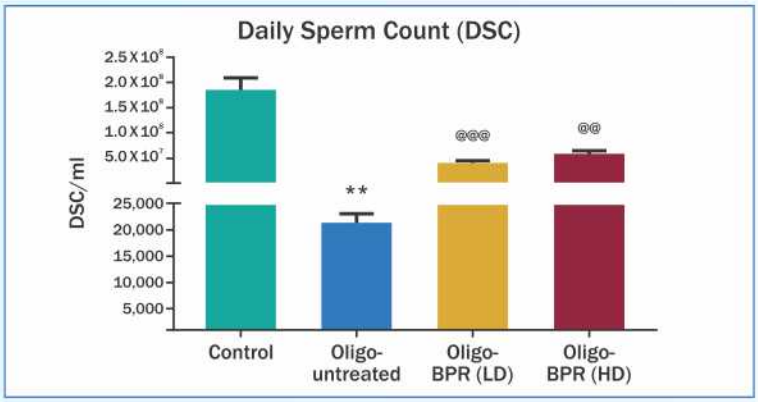

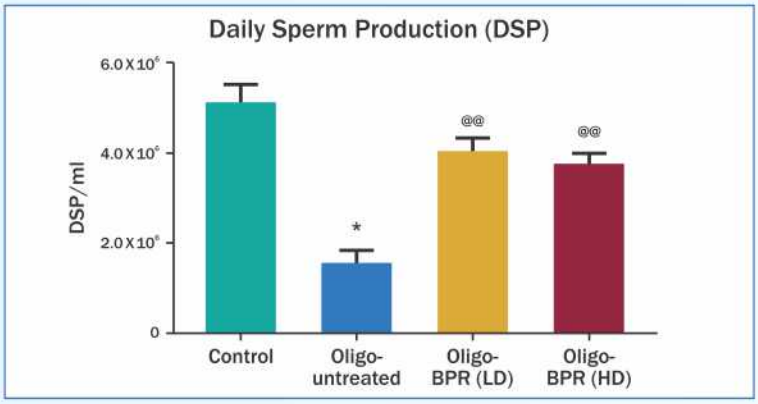

**p<0.01, *p<0.05 v/s Control Group, @@p<0.01, @@@p<0.001 v/s Oligospermia Untreated Group (One-way ANOVA followed by students t test).

बीजपुष्टी रस (BPR) चिकित्सा द्वारा शुक्राणु गति (% Motile Sperm and % Progressive Sperm) में भी वृध्दि हुई।

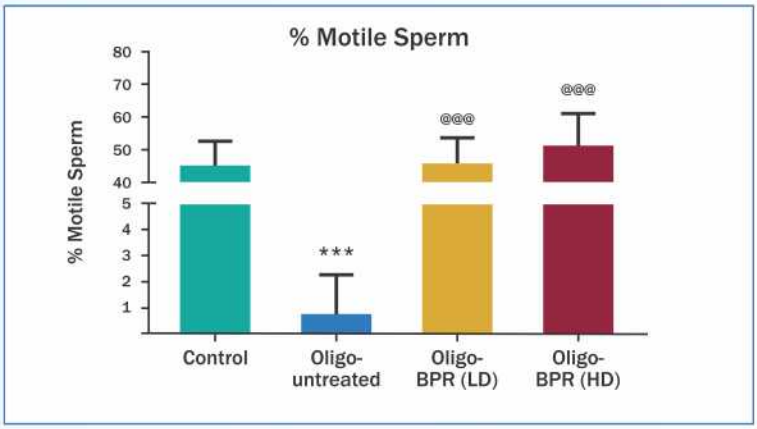

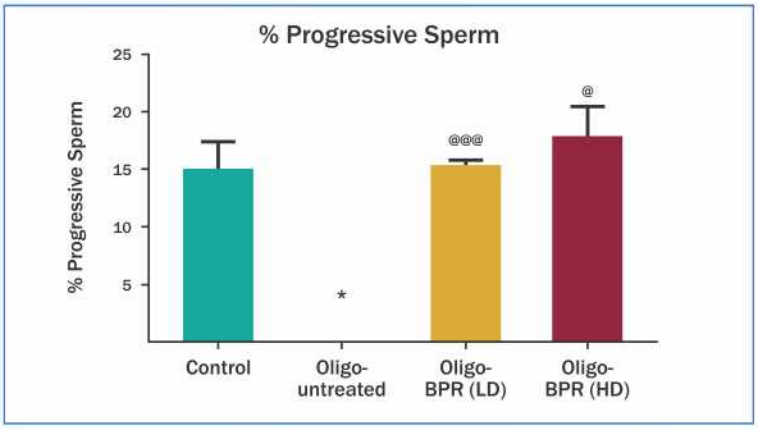

***p<0.001, *p<0.05 v/s Control Group, @p<0.05, @@@p<0.001 v/s Oligospermia Untreated Group (One-way ANOVA followed by students t test).

हिस्टोमॉरफोलॉजिकल जाँच में यह भी पाया गया की **बीजपुष्टी रस** चिकित्सा से वृषण के ऊतकों (Testicular tissue) पर 17β-estradiol जन्य विषाक्त प्रभाव कम हुआ।

Low Dose (LD): 279 mg/kg body weight (equivalent to 4 Tablets/day)
High Dose (HD): 419 mg/kg body weight (equivalent to 6 Tablets/day)
Duration of treatment: 54 days

बीजपुष्टी रस™

उत्कृष्ट प्रजाजनन एवं वाजीकरण औषधि।

अपत्यसंतानकरः बीजदोषनिवारणः।
बीजपुष्ट्यै पुरुषस्य बीजपुष्टिः रसः स्मृतः।।

मात्रा एवं अनुपान:
१ से २ गोलियाँ दिन में
१ या २ बार गोदुग्ध के साथ
अथवा चिकित्सक की सलाहनुसार

Shree Dhootapapeshwar Standards
SDS Monograph No. 1902654
Beejpushti Rasa

लाभ:
- प्रजनन क्षमता वर्धक।
  - शुक्राणुसंख्या वर्धक। (Improves Sperm Count)
  - शुक्राणुगति वर्धक। (Improves Sperm Motility)
- अवसादहर (Anti-stress)

उपयुक्तता:
- अल्प शुक्र
- दुष्ट शुक्र
- क्षीण शुक्र
- विशुष्क शुक्र

उपलब्धता: ३० गोली (ब्लिस्टर पॅक)

अर्श व्याधि में अर्श हिता टेबलेट्स तथा आँईन्टमेन्ट की उपयोगिता।

अर्श (Hemorrhoids) यह सामान्यतः पाये जानेवाला गुदगत विकार हैं। अर्श व्याधि में गुदवली (गुदगत उतक) का नीचे की ओर विस्थापन होकर सिराकौटील्य (Venous dilatation) उत्पन्न होता हैं।

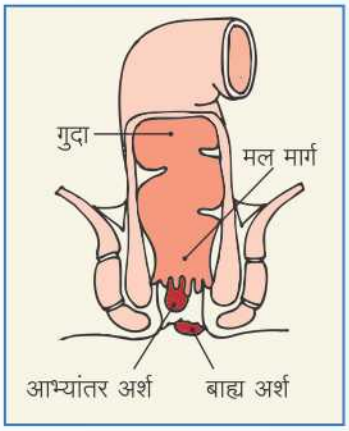

५० वर्ष या उससे अधिक आयुवाले लगभग ५०% व्यक्ति अर्श के लिए चिकित्सा लेते हैं तथा इनमें से १०–२०% रुग्णों में शस्त्रकर्म की आवश्यकता होती हैं।[1] गुदप्रदेश में वेदना, कण्डू, रक्तस्राव और स्पर्शगम्य या कथित विकृति यह अर्श के सर्वसामान्य लक्षण हैं। अधिकतम अर्श पीडित रुग्णों में औषधि चिकित्सा से ही उपशय प्राप्त होता हैं।[2]

अर्श चिकित्सा हमेशा से ही आयुर्वेद की विशेषता तथा चिकित्सकों एवं रुग्णों का मुख्य विकल्प रहा हैं। सभी आयुर्वेद संहिताग्रन्थों में **अर्श** का वर्णन किया गया है। आचार्य सुश्रुत ने **अर्श** व्याधि का समावेश **अष्ट महागद** में किया हैं।

अरिवत् प्राणान् शृणाति हिनस्तीत्यर्शः। – मा.नि. अर्श/१

अर्श यह गुदप्रदेश की व्याधि हैं तथा गुद यह सद्यः प्राणहर मर्मों में से एक हैं। **अर्श** रुग्ण को शत्रूसमान पीडा देता है।

... प्रकुपितो वायुरपानस्तं मलमुपचितमधोगमासाद्य गुदवलिष्वाधत्ते, ततस्तास्वर्शांसि प्रादुर्भवन्ति। – च.चि. १४/९

अर्श के प्रधान हेतुओं में अनुचित दिनचर्या, अनुचित आहार, अतिप्रवाहण, मलवेगधारण, सुखासीन जीवनशैली, व्यायाम का अभाव, पंचकर्म प्रक्रियाओं का असम्यक् प्रयोग इनका समावेश होता है। इन हेतुओं के कारण **जठराग्नि** विकृति तथा **त्रिदोष** विशेषतः **अपानवायु** का प्रकोप होता हैं। प्रकुपित हुई **अपानवायु** गुदवली में सञ्चित मल पर दबाव डालकर **अर्श** की उत्पत्ति करता हैं। मेद, मांस, और त्वचा यह **अर्श** के अधिष्ठान हैं। अर्श के दो प्रकार वर्णित हैं – **सहज** और **जातोत्तरकालज**। **शुष्क** (अस्रावी) और **स्रावी** यह भी **अर्श** के दो प्रकार हैं।

चतुर्विधोऽर्शसां साधनोपायः।
तद्यथा – भेषजं क्षारोऽग्निःशस्त्रमिति। – सु. चि. ७/३

आयुर्वेद में **अर्श** की चतुर्विध चिकित्सा वर्णित हैं – **औषधि, क्षार, अग्नि** तथा **शस्त्र** चिकित्सा। रक्तदुष्टी जन्य तथा पित्तप्रधान **अर्श** में रक्तमोक्षण विधि का निर्देश हैं। आयुर्वेदानुसार **अर्श** व्याधि की अपुर्नभव चिकित्सा तथा शीघ्र उपशय प्राप्ति के लिए पथ्यकर आहार–विहार का विशेष महत्व हैं। औषधि चिकित्सा का उद्देश्य अर्श के लक्षणों में उपशय प्रदान करने के साथ– साथ जठराग्नि को प्राकृतावस्था में लाना भी हैं।

व्यत्यासान्मधुराम्लानि शीतोष्णानि च योजयेत्।
नित्यमग्निबलापेक्षी जयत्यर्शः कृतान् गदान्।। – च. चि. १४/२४३

चरकसंहिता के अनुसार, **अर्श** व्याधि में अग्निबल के अनुसार व्यत्यास चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए। कभी शीतद्रव्य तो कभी उष्णद्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए तथा कभी मधुर तो कभी अम्ल द्रव्यों का प्रयोग जठराग्नि को प्राकृतावस्था में लाने के लिए लाभदायी होता हैं।

अर्श चिकित्सा में उपयुक्त होनेवाले महत्वपूर्ण औषधिद्रव्य तथा योग में सूरण, महानिम्ब, नागकेशर, अरिष्टक, त्रिफलाचूर्ण, अभयारिष्ट, अर्शोघ्नी वटी और अर्शकुठार रस का समावेश हैं। स्थानिक चिकित्सा हेतु तिल तैल, करंज तैल, निम्ब तैल, शोधित सर्ज इत्यादी का प्रयोग किया जाता है।

अर्श हिता टेबलेट्स तथा **आँईन्टमेन्ट** का प्रयोग **अर्श** व्याधि में होनेवाले गुदगत रक्तस्राव, वेदना तथा शोथ को कम करने के लिए किया जाता है।

अर्शहिता टेबलेट्स (टे.) तथा **ऑइन्टमेन्ट** (ऑ.) के घटकद्रव्यों के महत्वपूर्ण कार्य इस प्रकार हैं।

घटक द्रव्य	कार्य
सूरण (टे.)	दीपन, पाचन तथा अर्शोघ्न।
अरिष्टक (टे.)	त्रिदोषशामक, उष्ण तथा शोथघ्न।
शोधित सर्जरस (टे., ऑ.)	व्रणरोपक, शोथघ्न तथा वेदनाहर।
कर्पूर (भीमसेनी) (ऑ.)	वेदनाहर तथा कण्डुघ्न।
तिल तैल (ऑ.)	व्रणरोपक तथा वेदनाहर।
मधूच्छिष्ट (ऑ.)	रक्तस्तंभक तथा व्रणरोपक।

References:
1.Mustafa Cellalettin Haksal et al. Journal of Health Sciences 2015;5(3):99-103.
2. Riss S, Weiser FA, Schwameis K, Riss T, Mittlböck M, Steiner G, Stift A. The prevalence of hemorrhoids in adults. Int J Colorectal Dis. 2012 Feb;27(2):215-20. doi: 10.1007/s00384-011-1316-3. Epub 2011 Sep 20. PMID: 21932016.

अर्श हिता®
टेबलेट्स एवं ऑईंटमेंट
अर्श चिकित्सा में सर्वोत्तम।
उपयुक्तता:
• सरक्त अर्श
• शुष्क अर्श
• आभ्यंतर तथा बाह्य अर्श
• सशूल अर्श
• गुदशोथ
• परिकर्तिका
उपलब्धता: ६० गोली
उपलब्धता: ३० ग्राम
ऑप्लिकेटर के साथ
मात्रा एवं अनुपान: अर्श हिता
२ से ३ गोलियाँ, दिन में २ से ३ बार, त्रिफला चूर्ण, अभयारिष्ट अथवा कोष्ण जल के साथ अथवा चिकित्सक की सलाहनुसार।
उपयोग के लिए निर्देश: अर्श हिता
मलत्याग के पूर्व एवं पश्चात् प्रयोग करे ।

धूतपापेश्वर
१८७२ से आयुर्वेद सेवा
अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :
स्वास्थ्य सेवा विभाग
श्री धूतपापेश्वर लिमिटेड
१३५, नानुभाई देसाई रोड, खेतवाडी, मुंबई- ४०० ००४.
फोन : ९१-२२-६२३४ ६३०० फॅक्स :९१-२२-२३८८ १३०८
ई-मेल : healthcare@sdlindia.com
वेब साईट : www.sdlindia.com
केवल पंजीकृत चिकित्सक, अस्पताल या प्रयोगशालाओं के लिये
© All Copy Rights Reserved